प्रवाह प्रतिमुख

न तैरो धारा के प्रतिकूल
करो मत प्राणी ऐसी भूल
अरे! सरिता की शक्ति अमेय
मात्र बहना ही इसका ध्येय
भासते इसको अरिवत कूल
न तैरो धारा के प्रतिकूल ।।1।।

बहे जाते तृण यहां अगण्य
न समझो उनको अबल नगण्य
जानते हैं वे जीवन रीति
वेग से रखते हैं वे प्रीति
न पथ में उनके कंटक शूल
न तैरो धारा के प्रतिकूल ।।2।।

अमित उनमें आनंद उछाह
वहन करता है स्वयं प्रवाह
बिना श्रम मिल जाता गंतव्य
समर्पण नित लाता फल नव्य
सफलता मंत्र यही है मूल
न तैरो धारा के प्रतिकूल ।।3।।

अफलधर बनता बहु पुरुषार्थ
फिसलते कर से यश, सुख, अर्थ
शक्ति अपव्यय यह, नहीं विवेक
अहं का शायद यह अतिरेक
अंततः चाटोगे तुम धूल
बहो मत धारा के प्रतिकूल ।।4।।

मनस्वी बोला तब हुंकार
न स्वीकृत ऐसे मुझे विचार
अन्य बल से जो है गतिमान
उन्हें सब मिलता किंतु न मान
मात्र वे पादप क्षुद्र अमूल
प्रवाहित धारा के अनुकूल ।।5।।

निम्नतर तल पाने को व्यग्र
जगत के विपुल प्रवाह समग्र
काम्य द्रुत स्वचल जिन्हें अवरोह
वहें वे क्योंकि कठिन आरोह
झेलने पड़ते हैं बहुशूल
उन्हें जो धारा के प्रतिकूल ।।6।।
तुम्हें जो होता है प्रतिभात
नहीं श्रम निष्फल है वह तात
बढ़ा हूं जो आगे की ओर
लगाकर अपना पूरा जोर
वही देता मुझको आनंद
स्रोत अभिमुख हूं, गति यदि मंद
कभी पाऊंगा अपना मूल
सोचकर छाती जाती फूल ।।7।।

न कण हूं मैं सिकता का सूक्ष्म
न तृण हूं शुष्क और निष्प्राण
खेलता उग्र वीचियों बीच
मकर हूं करता कंपित प्राण
हिलाने में सक्षम हूं सदा
परम दुर्भेद्य नियति की चूल
अतः मैं धारा के प्रतिकूल
तैरता लोभ,राग,भय,भूल ।।8।।

निम्नतम तल आते ही मंद
शिथिल होता विराट भी वाह
विभाजित होती धार असंख्य
भिन्न स्वीकृत करतीं हैं राह
प्लवन दुर्वह होते ही वहां
भार को निक्षेपित कर धार
स्वयं हो जाती है प्रविलीन
अन्य को सकती कहां उबार ।।9।।

आज जो बहते धारा मध्य
वीचिरय मुदित और अपशंक
अंततः मिलता उन्हें विशाल
क्षारमय दलदल कुत्सित पंक
समुद्यत जहां मेदिनी नित्य
निगलने को फंसते ही सत्व
छीन लेने को पूर्व प्रदत्त
देह निर्माता, पोषक तत्व
वेदि पर जाता जीवन झूल
यही क्या सरणि, सुगम अनुकूल ।।10।।

प्रवाहित जो धारा के साथ
वसुधि में होंगे समुद निमग्न
तृषा उपशमन शक्ति से रहित
उसे पा होंगे आशा भग्न
जिसे पाने को आतुर सदा
घूमते सहते कष्ट अगण्य
अंततः लेगा सांसें सोख
वही आपातरम्य लावण्य ।।11।।

दूर से लगता था जो रुचिर
सुधावत धवल समुज्ज्वलकांति
पवन प्रेरित उर्मिज वह फेन
मिलेगा जब टूटेगी भ्रांति
टूट मानस शाखा से आशु
गिरेगा बिखरा आशा फूल
स्वयं को पाएंगे अविकल्प
बह रहे जो प्रवाह अनुकूल ।।12।।

पा गया हूं झीनी सी झलक
जहां से यह उद्भूत प्रवाह
तभी से लगन लगी अनिवार्य
ग्रहण कर ली यह दुर्गम राह
समुन्नत सुदृढ़ विरज विश्वस्त
सचेतन शोभन सुखद उदार
शुभ्र श्रेयस्कर अनघ प्रसन्न
सौम्यता पाती जहां प्रसार ।।13।।

विश्रामय शीतल सुरभित शांत
लक्ष्य मेरा है बस वह प्रांत
जहां मिलती शाश्वत विश्रांति
सकल प्रविलीना होती भ्रांति
आशु धुल जाते हैं निःशेष
चिन्ह मानस पर जो उत्कीर्ण
सकल पार्थिवता का अवसान
दिव्यता करती बंधन शीर्ण ।।14।।

प्रेमघन आदिम जो पीयूष
सकल संसृति का है जो मूल
अभय छायादायक विस्तीर्ण
जहां वह पावन विशद दुकूल
ग्राह्य है मुझको बस वह पंथ
सदा जो ऋत के है अनुकूल
चला जा रहा, लोक से भिन्न
अतः मैं धारा के प्रतिकूल ।।15।।

- शिवकुमार मिश्र

दि. 25 अप्रैल 2014